राष्ट्रीय आंदोलन में देशी राज्यों की भूमिका : एक अध्ययन

श्वेता कुमारी
शोधार्थी
स्नातकोत्तर, इतिहास विभाग
ल0 ना0 मिथिला, विश्वविद्यालय, दरभंगा

चौथे दशक के मध्य में परस्पर हुड़े हुए दो घटना क्रमों ने रियासतों के तत्कालीन हालात को काफी प्रभावित किया। पहला भारत सरकार अधिनियम, 1935 द्वारा संविधानिक रूप से देशी रियासतों को शेष भारत से जोड़ने की योजना थी। इन्हें मिलाकर भारत को एक संघीय स्वरूप प्रदान करने की योजना थी। संघीय विधान मंडल में रियासतों को प्रतिनिधित्व मिलना था। लेकिन यहाँ चाल यह थी कि रियासतों से प्रतिनिधि चुनने का अधिकार खुद राजा–महाराजाओं को दिया जाय। रियासतों से चुने गए प्रतिनिधियों की संख्या संधीय विधान मंडल की कुल संख्या की एक तिहाई थी। अंग्रेजी हुकुमत का इरादा राजाओं के इन एजेंटों को राष्ट्रीय आंदोलन के खिलाफ इस्तेमाल करना था। काँग्रेस राज्य जन कॉन्फ्रेंस तथा अन्य संगठनों ने अंग्रेजी हुकुमत के इस चाल को भाँप लिया था। इसलिए उन्होंने माँग की कि रियासतों का प्रतिनिधित्व करने के लिए जनता खुद अपने प्रतिनिधि चुने। राजाओं के एजेंट जनता के प्रतिनिधि नहीं हो सकते। यह माँग इस बात की प्रमाण थी कि रियासतों की जनता अब लोकतांत्रिक सरकार के लिए कसमसाने लगी थी। अंत में यह योजना लागू ही नहीं हुई।[1]

दूसरी घटना थी 1937 ई0 में ब्रिटिश इंडिया में अनेक प्रांतों में काँग्रेसी सरकार का गठन। कांग्रेस के सत्ता में आने से रियासतों की जनता में एक नया आत्मविश्वास जगा, नई उम्मीदें जगी और रानीतिक गतिविधियाँ तेज हुई। 1938–39 देशी रियासतों में नई चेतना के वर्ष थे। उत्तरदायी सरकार और अनेक सुधारों की माँग को लेकर कई आंदोलन छिड़े पर संगठन नहीं बना था, बड़ी संख्या में प्रजा मंडलों का गठन हुआ जयपुर, कश्मीर, राजकोट, पटियाला, हैदराबाद, मैसूर, त्रावणकोर, उड़ीसा आदि रियासतों में बड़े पैमाने पर संघर्ष शुरू हुआ। इस संघर्षों का नेतृत्व करने वालों में से कइयों ने बाद में भारतीय राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जैसे– शेख अब्दुल्ला, यू0 एन0 ढ़ेबर, जमना लाल बजाज, जय नारायण व्यास इत्यादि।[2] इन नए घटनाक्रमों से काँग्रेस की नीतियाँ में भी स्पष्ट बदलाव आया। 1938 ई0 के हरिपुरा अधिवेशन में जो काँग्रेस यह कह रही थी कि रियासतों की जनता काँग्रेस के नाम से रियासतों के अन्दर कोई आन्दोलन नहीं छेड़ सकती, कुछ ही महीने बाद वही कांग्रेस रियासतों के प्रति अपनी नीति बदलने को तैयार थी व्योंकि कांग्रेस ने देख लिया कि जनता संघर्ष पर उतारू है और वह राजनीतिक रूप से जागरूक हो चुकी है। कांग्रेस का सोशलिस्ट और वामपंथी खेमा तो बहुत पहले से ही कांग्रेस नेतृत्व क लिए इस पर दबाव डाल रहा था।[3]

मार्च 1939 ई0 को त्रिपुरा अधिवेशन में कांग्रेस ने इस नई नीति को मंजूरी दी। 1939 ई0 में राज्यपाल कांफ्रेंस ने लुधियाना अधिवेशन के लिए जवाहर लाल नेहरू को अध्यक्ष चुना। इस तरह ब्रिटिश इन्डिया और देशी रियासतों में छिड़े आंदोलन अब खुले रूप से एक दूसरे से जुड़ गए।[4] मार्च 1939 ई0 के त्रिपुररा अधिवेशन में सुभाष चन्द्र बोस ने भारतीय रियासतों की प्रजा के अपूर्व जागरण की सराहना की और कांग्रेस क अहस्तक्षेप की नीति पर पुनरावलोकन करने की बात उठाई। श्रीमती कमला देवी चट्टोपाध्याय ने भी ए0 आई0 आर0 एस0 पी0 सी0 के साथ बेहतर तालमेल को कांग्रेस के लिए जरूरी बताया। कांग्रेस ने अपने प्रस्ताव में पुनः दुहराया कि उसकी सहानुभूति प्रजा के साथ है और राजाओं को परामर्श दिया कि समय के साथ चले। कांग्रेस ने अपनी नीति पर पुर्नविचार किया और यह निर्णय लिया गया कि कांग्रेस कमेटी ए0 आई0 एस0 पी0 सी0 की स्टैंडिंग कमेटी से मिलकर उन माध्यमों को ढूँढेगी जिससे ब्रिटिश भारत और भारतीय रियासतों के बीच बेहतर तालमेल हो सके। अतः त्रिपुरा प्रस्ताव में कांग्रेस और एवं आई0 सी0 पी0 सी0 के बीच की खाई को पाट दिया और ए0 आई0 सी0 पी0 सी0 ने धीरे–धीरे कांग्रेस में अपनी पहचान बना ली।[5]

1939 ई0 में भारतीय रियासतों में लोकप्रिय आंदोलन ने काफी जोर पकड़ा और गाँधी जी को जी नियंत्रित जनसंघर्ष को पहली बार रियासतों में लागू करने का मौका मिला। कुछ आंदोलन में सरदार पटेल और जमना लाल बजाज ने नेतृत्व संभाला था तो कुछ महात्मा गांधी, पंडित जवाहर लाल नेहरू और आचार्य कृपालानी ने हस्तक्षेप किया। कुछ घटनाओं में सांविधानिक उद्वेग था तो कुछ में नागरिक प्रतिरोध या सविनय अवता। सेठ जमनालाल बजाज ने

जयपुर में सत्याग्रह का नेतृत्व किया था उन्होंने सरदार पटेल के साथ यू0 एन0 ढेबर के नेतृत्व में राजकोट में चल रहे स्थानीय प्रजामंडल आंदोलन में हस्तक्षेप किया।[6]

राजकोट के राजा एक निडर देश प्रेमी और बहादुर राजा थे। उन्हें एजेंसी का कोई डर नहीं था। सदा इसी चिंता में रहते थे कि मेरी प्रजा किस तरह से सुखी रहे। इसिलिए उन्होंने शासन में प्रजा को हिस्सा देने के लिए उन्होंने राज कोट में एक 'प्रजा प्रतिनिधि सभा' स्थापित की थी और उसकी सलाह से हुकूमत करते थे।[7] लेकिन उनके पुत्र अयोग्य निकले। वह प्रजा पर अत्याचार करता था, किसानों के ऊपर अनेक कर लाद दिया गया जिससे खेती बर्बाद हो गई उद्योग धंधा पर भी इसका बुरा असर पड़ा। भोग–विलास पर भारी खर्च किया जाता था और न कि विकास कार्यो पर। मजदूरों से 14 घंटे काम लिय जाता था तथा उनका शोषण किया जाता था। दीवान वीरावल ने मजदूरों को दबाने का प्रयास किया, उन्हें निर्वासित किया गया। फलस्वरूप मजदूरों ने हरताल कर दिया। राजकोट के नेता ढेबर भाई के नेतृत्व में मजदूरों ने आंदोलन तेज कर दिया। रियासत के अधिकारियों ने राजकोट प्रजा पिरिषद के अधिकारियों ने राजकोट प्रजा परिषद् को गैरकानूनी घोषित कर दिया। इस आदेश के निकाले जाने के बाद समिति का ध्यान इस आंदोलन की ओर आकृष्ट हुआ। समिति ने जहाँ एक ओर उत्तरदायी शासन की प्राप्ति के लिए किए जाने वाले इस आंदोलन का स्वागत किया वहाँ दूसरी ओर उसने रियासत के बाहर के लोगों को आंदोलन में भाग न लेने का परामर्श दिया। ऐसी स्थिति में राजकोट के ठाकुर साहब ने सरदार बल्लभ भाई पटेल को बम्बई में मुलाकात के लिए बुलाया। 26 दिसम्बर को सरदार पटेल और ठाकुर साहब के बीच समझौता की घोषणा हुई, जिसमें राजकोट की पूजा का संघर्ष समाप्त हो गया। यह सिर्फ राजकोट की जनता का ही नहीं अपितु साधारण रूप से रियासती प्रजा की विजय थी। सरदार पटेल और ठाकुर साहब के बीच 8 घंटे क विवाद के बाद जो समझौता हुआ उसके अनुसर ठाकुर साहब ने यह वचन दिया कि हमने दस ऐसे व्यक्तियों की एक समीति नियुक्त करने का निश्चय किया है जिसमें तीन रियासत के अफसर और सात प्रजा जन होंगे। इस समिति द्वारा ऐसी योजना तैयार की जाएगी जिसमें प्रजा को अधिक से अधिक व्यापक अधिकार दिए जाएँगे। यह भी मान लिया गया कि शान्ति और सद्भावना स्थापित करने के उद्देश्य से प्रत्येक प्रकार का अवैध आंदोलन बंद कर दिया जाएगा और हम सभी राजनैतिक कैदियों को रिहा कर देंगे। और दमनकारी कानून को वापस ले लेंगे।[8] समझौता 26 दिसम्बर 1938 ई0 को हुआ था। इस प्रकार रियासतों में धीरे–धीरे आंदोलन जोर पकड़ते गए और विद्रोह होने लगा। सन् 1938–39 के वर्षो में हुई राजनीतिक लड़ाइयों का इतिहास बड़ा ही दिलचस्प है। सरदार इन सब लड़ाईयों मं बड़ी दिलचस्पी लेते थे और उनकी छोटी बातों से परिचित रहते थे।[9]

मैसूर का राज्य हमारे देश के बड़े राज्यों में एक था। उस राज्य में शिक्षा का अनुपात बहुत अच्छा था और वहाँ के लोग भी उत्साहित थे वहाँ के स्टेट कांग्रेस का पूरा संविधान उन लोगों ने राष्ट्रीय कांग्रेस जैसा ही रखा था। 26 जनवरी 1938 ई0 को सारे राज्य में आजादी का दिन मनाने का स्टेट कांग्रेस ने निश्चय किया। स्थान–स्थान पर राष्ट्रीय कांग्रेस का झंडा फहराकर उन्होंने झंडा अभिवादन का कार्यक्रम रखा। राज्य इसके विरूद्ध दमन का कार्यवाही करने लगा। जिस कारण से राज्य के साथ स्टेट कांग्रेस के छोटे–छोटे झगड़े होने लगे। इसी सिलसिले में अप्रैल मास में वहाँ एक ऐसा करूण हत्याकांड हो गया, जिससे सारे भारत का ध्यान आकर्षित किया। बंगलौर से लगभग पच्चीस मील दूर विदुराश्वत्थम नामक एक छोटा सा गाँव है। वहाँ अप्रैल के तीसरे सप्ताह में एक बड़ी यात्रा होती है और प्रतिदिन लगभग बीस आदमी इकट्ठे होते है। सरकार को यह ख्याल हुआ होगा कि स्टेट कांग्रेस वाले इस यात्रा में आकर भाषण देगें और राष्ट्रीय झंडा के साथ जुलूस निकालेगें। इसिलिए पहले से ही वहाँ के जिला मजिस्ट्रेट ने उस इलाके में राष्ट्रीय झंडा फहराने, सभाएँ करने तथा भाषण देने की मनाही का हुक्म जारी कर दिया था।[10] उस हुक्म को चुनौती देने के लिए 25 अप्रैल को स्टेट कांग्रेस के कुछ आदमी पास के गाँव से बड़ा जुलूस निकालकर विदुराश्वत्थम गए और वहाँ उन्होंने सभा की जिसमें दस–पंद्रह हजार आदमी उपस्थित थे। मजिस्ट्रेट वहाँ जा पहुँचा और सभा को गैर कानूनी करार देकर उसने उन चार आदमियों को गिरफ्तार कर लिया जिनके हाथों में राष्ट्रीय झंडे थे और सभा को बिखर जाने की आज्ञा दी। मजिस्ट्रेट की अनुमति से ही जो लोग सभा में आए थे उन्हें स्टेट कांग्रेस के एक नेता ने कहा हमारा उद्देश्य पूरा हो गया, आप सब बिखर जाए, इस पर जो लोग जुलूस में आए थे, वे वहाँ से चले गए। जो यात्रा के लिए अए आए थे वे धूप बहुत होने और दूसरी छायादार जगह न होने के कारण सभास्थल के पास बनी अमराई में बैठ गए। उसे भी मजिस्ट्रेट ने पाँच मिनट के अंदर बिखार जाने के लिए कहा। लोगों ने कहा कि हम तो यात्रा के लए आए है और अन्यत्र कहीं छाया नहीं है। इसलिए यहाँ बैठे है। शाम होने पर यहाँ से चले जाएँगे। परन्तु मजिस्ट्रेट को लगा कि इन लोगों को इस तरह यहाँ बैठे रहने देने से हमारे हुक्म की पाबंद्ध नहीं मानी जाएगी। इस लिए सबसे बिखर जाने का आग्रह

किया और पाँच मिनट ही प्रतीक्षा करके उन पर लाठी चार्ज करवा दिया।[11] मैसूर सरकार के वक्तव्य के अनुसार लोगों ने सामना किया और पुलिस को घेरकर उसपर पत्थबाजी शुरू कर दी जिससे पुलिस वालों को चोट आई। इसलिए पुलिस को आत्मरक्षा के लिए गोली चलानी पड़ी। मैसूर सरकार के मतानुसार गोलीकांड में दस आदमी मारे गए और 40 घायल हुए। जबकि प्रजा पक्ष के मुताबिक कम से कम 32 लोग मारे गए और 48 गंभीर रूप से घायल हो गए।[12] इस हत्याकांड से सारे देश में खलबली मच गई। मैसूर सरकार ने तीन न्यायाधीशो की एक जाँच समिति द्वारा घटना की जाँच कराने की घोषणा की।[13] गाँधी जी न 29 अप्रैल को इस घटना के बारे में एक वक्तव्य प्रकाशित किया जिसमें उन्होंने लिखा– ''मैसूर सरकार द्वारा प्रकाशित वक्तव्य मैने पढ़ा है। वह मेरे गले नहीं उतरा। मैसूर के लोक सेवकों के तरफ से अनेक दर्द भरे पत्र और तार आए है। निहत्थी भीड़ पर गोली चलाई गई जिससे कुछ लोग मारे गए और कुछ घायल भी हुए। मैसूर सरकार को मेरी यह सूचना है कि वह केवल जाँच समिति नियुक्ति करके संतोष न कर ले, भले वह कितनी ही निष्पक्ष क्यों न हो मैसूर में राष्ट्रीय झंडे के बारे में जो आंदोलन हो रहा है वह तो समय का प्रतीक है। इस मामले में उसे प्रजा की माँग स्वीकार कर ही लेनी चाहिए।''[14]

यह वक्तव्य प्रकाशित करने के बाद गाँधी जी ने सरदार और कांग्रेस की प्रधानमंत्री श्री कृपलानी जी को इस घटना की स्वयं जाँच करने और महाराजा, दीवान तथा स्टेट कांग्रेस के नेताओं से मिलकर न्याय दिलाने के लिए यथासंभव प्रयत्न करने के लिए मैसूर भेजा।[15] सरदार तथा कृपलानी 6 मई को बंगलौर पहुँचे और मैसूर के महाराजा से, दीवान सर मिर्जा इस्लाइम से तथा स्टेट कांग्रेस के नेताओं से मिले। सर मिर्जा इस्लाइम बड़े उदार, सज्जन व्यक्ति है। उनके साथ हुई बातचीत के परिणामस्वरूप अच्छी तरह समझौता हो गया।[16] इसी समय गुजरात में भी किसान और राज्य के बीच एक बड़ी तीव्र लड़ाई हो रही थी और यहाँ भी समझौते हुए।[17]

इसी बीच भारत की कई अन्य रियासतों में बहीं अधिक प्रभावशाली और महत्वपूर्ण आंदोलन विकसित हो चुके थे। इनमें उड़ीसा के रजवाड़े, हैदराबाद और त्रावणकोर, पंजाब की पटियाला, कपूरथला और सिरमौर की रियासतों में चलने वाले आंदोलन प्रमुख थे।[18]

दिसम्बर 1938 में सी0 एस0 पी0 के नेता नवकृष्ण चौधरी ने धेनकलाल में एक सत्याग्रह का नेतृत्व किया। नीलगिरी, नयागढ़, तलचर और रनपुर मे सशक्त आंदोलन उठ खड़े हुए और अनेक हिंसक धटनाएँ हुई। जिनमें देशी नरेशों की सशक्त शक्ति की सामना आदिवासियों ने तीर–कमान से किया।[19] 5 जनवरी 1939 को लोगों ने राजपुर मं शाही महल पर गोली चलाने वाले ब्रिटिश एजेंट मेजर वार्जेल गेट को पत्थर मार–मार कर मार डाला। हजारों लोग तलचर से निकलकर कांग्रेस द्वारा शासित उड़ीसा के अंगुल और कौशल में डेरा डाल दिया। गांधीजी ने पूरा प्रयास किया तलचर और धेनकलाल में थोड़े बहुत राजनीतिक सुधार के बदले उड़िसा आंदोलन समाप्त हो जाए। यह मुद्दा गोपबन्धु चौधरी के नेतृत्व में उड़ीसा के गांधीवादियों और समाजवादियों और कम्युनिस्टों के बीच विवाद का विषय बना। समाजवादी और कम्युनिस्ट उड़ीसा में किसान सभा का नेतृत्व कर रहे थे।[20]

लगभग उसी समय धर्मनिर्पेक्ष आधार पर स्टेट कांग्रेस की स्थापना की गई जिसके संस्थापक मराठावाड़ के स्वामी रामानन्द तीर्थ और गोविन्ददास श्राफ, तेलंगाना के रविनारायण रेड्डी और हैदराबाद के सिराजुल हसन तिरमिजी जैसे कुछ मुसलमान थे। स्टेट कांग्रेस ने 24 अक्टुबर 1938 में एक समान्तर और अधिक प्रभावशाली आंदोलन किया। जिसमें वैधता प्रदान करने एवं उत्तरदायी सरकार की माँग की थी, साथ ही उस्मानिया विश्वविद्यालय के छात्रों के बीच एक सशक्त 'बन्दे मातरम' उठ खड़ा हुआ जब निजाम ने देशभक्तिपूर्ण इस गीत को गाए जाने पर प्रतिबंध लगा दिया तो विरोध में इन छात्रों ने विश्वविद्यालय छोड़ दिया।[21]

दिसम्बर 1941 ई0 में कम्युनिस्ट नेताओं ने 'पीपुल्स वार' का नारा दिया। परिणामस्वरूप कम्युनिस्टों और गैर कम्युलिस्टों क बीच मतभेद बढ़ने लगा। यह मतभेद भारत छाड़ो आंदोलन के दौरान चरम सीमा पर पहुँच गया। कम्युनिस्ट 'भारत छोड़ो' आंदोलन के समर्थक नहीं थे। वे चाहते थे कि फासिस्टों के खिलाफ भारत को अंग्रेजों का साथ देना चाहिए। विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद जनसंघर्ष ने नया मोड़ लिया। कम्युनिस्ट पार्टी की ब्रिटिश समर्थक पीपुल्सवार नीति बदल गई। 1945–46 में जबरदस्त किसान आंदोलन नालगोंडा, वारंगल और खम्भ जिलों में फेल गया। जो जबरन अनाज वसूली, बेगार प्रथा और जमीन से अवैध बेदखली के खिलाफ था। 1946 के अंत में दमनकारी नीतियों के द्वारा आंदोलन को दबाया गया। लेकिन किसानों का मनोबल टूटने क बजाय और बढ़ा।[22] 1947 ई0 में भी रजाकारों क

खिलाफ इनका संघर्ष सराहनीय रहा। 9 अगस्त 1942 को भारत छोड़ो आंदोलन छिड़ जाने पर मारवाड़ में भी आंदोलन तेज हो गया।

जून 1946 ई0 को ए0 आई0 एस0 पी0 सी0 की सामान्य परिषद दिल्ली मं हुई। जिसमें कैबिनेट मिशन योजना पर विचार–विमर्श किया गया। पं0 जवाहर लाल नेहरू ने अपने अध्यक्षीय भाषण मं अत्यधिक अनिवार्य समस्याओं के बारे में जोर देकर कहा जो मुख्यतः तीन थे :

1. भारतीय संविधान
2. अंतरिम अवधि क लिए व्यवस्था
3. रियासतों का प्रजातंत्रीकरण ताकि वे बाँकी भारत के सामान्य स्तर तक पहुँच सके।[23]

ए0 आई0 एस0 पी0 सी0 की अन्य बैठकों मं इस बात पर जोर डाला गया कि रियासतों की प्रजा को संविधानिक सभा में प्रतिनिधित्व का अधिकार मिले। एक उपसमिति का भी गठन किया गया जो भारत में होने वाले संविधानिक परिवर्तनों का स्परेखा तैयार करे। कैबिनेट मिशन की योजनाओं के प्रकाशित होने क बाद पार्टी ने यह प्रस्ताव पारित किया कि संविधानिक सभा को दो विपरीत तत्वों से गठित नहीं किया जा सकता है। प्रस्ताव में जोर देकर कहा गया कि रियासतों के प्रतिनिधियों की बहाली उसी तरह होनी चाहिए जिस प्रकार प्रांतो में हो रहीं है। कांग्रेस ने गहरी चिंता व्यक्त की कि कुछ रियासतों में शासक सैनिक के माध्यम से लोकप्रिय माँगों को दबाने का प्रयत्न कर रहे है। इसी दौरान केरल में 13 अगस्त 1946 को शेर ओलाई और अम्बालापुरजहा के आसपास साम्यवादियों के द्वारा संचालित उपद्रव हुआ। चार पुलिस कर्मियों के मारे जाने के बाद इस क्षेत्र में मार्शल लौ लगाया गया। 2000 से भी अधिक श्रमिक मारे गए। पर साम्यवादियों के द्वारा किए उपद्रव का यह सही वक्त नहीं था। 1947 ई0 में बम्बई में हुए शासकों के एक सम्मेलन में यह कहा गया कि सर्वोच्च सत्ता वापस राजाओं को मिलनी चाहिए न कि नई भारत सरकार को। संघीय सरकार नियासतों के द्वारा सौपे हुए कार्यो को ही करेगी। पर कांग्रेस और ए0 आई0 एस0 पी0 सी0 ने राज्यों का संघ बनाने का समर्थन किया ताकि राजनीतिक शक्ति लोगों को मिले। लॉर्ड माउण्ट बेटन ने जब विभाजन की योजना लोगों के सामने रखी तब भी रियासतों के शासक विभाजित थे। उनमें से कुछ यह चाहते थे कि सत्ता परिर्तन के बाद उन्हें स्वतंत्रता मिल जाए, अनकी भौगोलिक और आर्थिक मजबूरियाँ चाहे जो भी हो। पर अधिकतर शासक यह याहते थे कि उनकी विलय भारतीय संघ में हो जाए और शक्तिशाली केन्द्र स्थापित हो। जोधपुर और जूनागढ़ पाकिस्तान का साथ देना चाहते थे। पर प्रजा की इच्छा भी महत्वपूर्ण स्थान रखती थी। जोधपुर को प्रजा, ठाकुरों और जागीरदारों के दबाव के कारण भारत में मिलना पड़ा। कुछ रियासतें यह चाहती थी कि सर्वोच्च सत्ता समाप्त होने के पश्चात जब नरेन्द्र मंडल भंग हो जाएगा तब उसके स्थान पर कोई और संस्था बने ताकि उनके हितों की रक्षा हो। भोपाल त्रावणकोर और हैदराबाद के शासक इस दिशा में कदम उठा रहे थे।[24]

1942 ई0 के क्रिप्स प्रस्तावों को भारत के सभी ब्रिटिश भारत के सभी राजनीतिक पार्टियों ने ठुकरा दिया क्योंकि भारतीय रियासत के 9 करोड़ लोगों के लिए इसमें कुछ नहीं कहा गया था। भारतीय रियासतों का भारत मं विलय नहीं करने पर यह संभव था कि देश बाल्कन प्रायद्वीप की तरह विखंडित हो जाता जिससे भारतीय एकता और अखंडता को खतरा हो सकता था। जनवरी 1946 ई0 में नरेन्द्र मंडल अधिवेशन में अनेक संविधानिक सुधारों का प्रस्ताव पारित किया गया। सिद्धांत के रूप में यह स्वीकार किया गया कि मौलिक अधिकारों को मान्यता दी जाए, स्वतंत्रता न्याय पालिका हो, प्रशासनिक बजट को असैनिक सूची से अलग किया जाए इत्यादि। इन प्रस्तावों को शीघ्र ही क्रियान्वित किया गया। मार्च 1946 ई0 में त्रावणकोर के महराजा ने कई अन्य विभाग रियासत के लोकप्रिय प्रतिनिधियों को दिए। रीवाँ, संदूर, बीकानेर, भोपाल, बडौदा, हैदराबाद, ग्वालियर, झाबुआ, सांगली, फरीदकोट, बूँदी, रतलाम, मैसूर, कठियावाड़, ओरछा, मणिपुर, भोर, जमखण्डी, कठियावाड़ ओरछा, मणिपुर, भोर, जमखण्डी, उदयपुर, सिरमौर, मण्डी, विलासपुर वगैरह में भी संविधानिक सुधार किए गए। विभिन्न चरणों में शिक्षा योजनाएँ कई रियासतों में लागू की गई।

दूसरी ओर दक्षिण भारत में आंदोलन दो समानान्तर उद्देशयों को लेकर शुरू हुआ – (क) स्थानीय सामाजिक और राजनीतिक आंदोलन के रूप में जिसकी माँग उत्तरदायी सरकार की स्थापना थी और (ख) साम्राज्य वादी शक्तियाँ के खिलाफ भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के विस्तार के रूप में जिसका लक्ष्य रियासतों की स्वतंत्रता प्राप्ति था। खासकर मैसूर, त्रावणकोर और कोचीन में प्रजामण्डल आंदोलन ने प्रजातांत्रिक स्वरूप दर्शाया। हैदराबाद और कश्मीर

जैसी रियासतों के शासकों ने प्रजा मण्डल आंदोलन पर संप्रदायिक होने का इल्जाम लगाया।[26] प्रजा मंडल आंदोलन का सामाजिक जनाधार काफी व्याप्त था। समाज के सभी शोषित वर्गो के लोगों ने आंदोलन में भाग लिया। प्रजामंडल आंदोलन भारतीय रियासतों में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का विस्तृत रूप था जिससे स्वतंत्रता संग्राम को और दृढ़ता मिली। लेकिन कांग्रेस नेतृत्व के अंर्गत चल रहे, स्वाधीनता संग्राम से सहानुभूति के अलावा प्रजामंडल आंदोलन को कुछ भी नहीं मिला। हालाँकि व्यक्तिगत रूप से कांग्रेसी नेता अवश्य नेतृत्व प्रदान करते रहे। त्रिपुरी अधिवेशनों के बाद स्थिति में बदलाव आया। 1940 के दशक के प्रारंभ से ही प्रजामंडल आंदोलन ने कांग्रेस के नेतृत्व में चल रहे राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम से अपनी पहचान बना ली, जिससे दोनों की स्थिति मजबूत हुई। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय प्रांतों के आलावा भारतीय रियासतों के लोगों की आशाएँ और आकांक्षाएँ भी फलीभूत हुई।

संदर्भ सूची :–

1. आर0 एल0 हांडा, हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम स्ट्रगल इन प्रिंसली स्टेट्स में उद्धृत, सी0 ए0 एन0, दिल्ली, 1968, पृ0– 11
2. सुमित सरकार, आधुनिक भारत, नई दिल्ली, 1996, पृ0– 386
3. विपिन चन्द्र, भारत का स्वतंत्रता संधर्ष, नई दिल्ली, पृ0– 290
4. टाइम्स ऑफ इंडिया में प्रकाशित भेटवार्ता, 25 जनवरी 1938 ई0
5. पी0 एन0 चौपड़ा, कश्मीर एवं हैदराबाद, नई दिल्ली, 2006, पृ0– 19–20
6. अमितेश कुमार, पूर्वोक्त, पृ0– 39
7. नरहरि द्वा0 पारिख, चौधरी राम नारायण, सरकार बल्लभ भई – 2, अहमदाबाद, 1956, पृ0 396–399
8. सीता रम्मैया, पूर्वोक्त, पृ0– 331
9. आर0 जे0 मूर, पूर्वोक्त, पृ0– 72
10. रॉबिन जेफरी द राजकोट सत्याग्रह ऑफ 1938–1939, नई दिल्ली, 1978, पृ0– 66
11. कोपलैंड, द प्रिंसेस ऑफ इंडिया इन द एंडगो ऑफ एम्पायर (1917–1947), इंग्लैंड, पृ0– 55
12. बारबरा रामूसैक, एन0, कांग्रेस एण्ड द पीपुल मूवमेंट इन प्रिसली इंडिया, 1988, कोलम्बस, पृ0– सं0 460–461
13. तदैव, पृ0– 461
14. इण्डियन एनु अल रजिस्टर, vol- 1, 1937, पृ0– 3590
15. द स्टेट्समैन, मार्च 18, 1939
16. नरहरि द्वा0 पारिखप पृ0– 384–386
17. तदैव पृ0– 391
18. बारबर रामू सैक, एन0 पूर्वोक्त, पृ0–391–392
19. सुमित सरकार, आधुनिक भारत का इतिहास दिल्ली, 1993, पृ0 387–88
20. एस0 बलियर सिंह, रनपुर इतिहास, 1990, पृ0– 87
21. पै0 सुंदरैया, तेलंगाना पीपुल्स स्ट्रगल एंड इट्स लेसन, कलकत्ता, 1972, पृ0– 4–5
22. रामानंद तीर्थ, पूर्वोक्त, पृ0– 108
23. उर्मिला फउनिस, टूवईस द इंटिग्रेशन ऑफ इंडियन स्टेट्स (1919–1947), बम्बई, 1968, पृ0– 201
24. बी0 एन0 पाण्डे, द इंडियन नेशनल मूवमेंट (1885–1947), सेलेक्ट डकुमेंट्स, लंदन, 1979, पृ0– 387
25. फिलिप्स टेलबोट, कश्मीर एण्ड हैदराबाद, वर्ल्ड पौलिटिक्स, कैम्ब्रिज 1949 पृ0–376–382
26. होम पोलिटिक रिपोर्ट्स फाइल सं0– 7/5/35, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली